महाराजा अग्रसेन और अग्रोहा

गोपाल शरण गर्ग

महाराजा अग्रसेन और अग्रोहा

गोपाल शरण गर्ग
(राष्ट्रीय महामंत्री)

श्री अग्रसेन फाउंडेशन

प्रकाशक :
श्री अग्रसेन फाउंडेशन
83, मॉडल बस्ती, करोल बाग, नई दिल्ली-110005
दूरभाष : 011-23633333, 23510630
E-mail : agroha@gmail.com
Website : www.allagrawal.org

महाराजा अग्रसेन और अग्रोहा

ISBN : 978-81-929878-0-4

मूल्य : ₹ 30/-
© : प्रकाशक
प्रथम संस्करण : 2015
शब्द-संयोजन
एवं आवरण : आधुनिक जनसंचार प्रा.लि. / 9718067709
मुद्रक : आधुनिक जनसंचार प्रा.लि. / 011-27103051

MAHARAJA AGARSAIN AUR AGROHA *by* Gopal Sharan Garg

महाराजा अग्रसेन और अग्रोहा

इतिहास साक्षी है कि जब-जब समाज में अनाचार, अत्याचार, दुराचार, भ्रष्टाचार हद से गुजरता है तो कोई अवतारी पुरुष जन्म लेता है और अव्यवस्थाओं व पापों के केन्द्र को नष्ट करता है। भगवान राम ने रावण का अंत किया। भगवान कृष्ण ने कंस का अंत किया और अग्रसेन जी ने कुंदसेन का अंत किया। कंस श्रीकृष्ण का मामा था और कुंदसेन अग्रसेन जी का चाचा था।

सभी अवतारी पुरुषों को जीवनभर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है क्योंकि दूसरों की कठिनाइयां ही उनकी कठिनाइयां होती हैं। वे अपने जीवन से लोगों को जीना सिखाते हैं। जिस तरह दो राजाओं राम और कृष्ण के जीवन से हम सब कुछ न कुछ सीखते हैं, उसी प्रकार तीसरे राजा अग्रसेन के जीवन से भी बहुत कुछ सीख सकते हैं। उन्होंने अहिंसा सिखायी, यज्ञ में पशुबलि को बंद करा दिया। उन्होंने त्याग सिखाया, इसके लिए उन्होंने अपना वर्ग बदल लिया। वह क्षत्रिय से वैश्य हो गये। उन्होंने परोपकार सिखाया। राज्य में आकर नये बसने वाले या किन्हीं कारणों से अक्षम हो गये परिवारों को एक मुद्रा और एक ईंट का उपहार देकर उनकी मदद करने की प्रथा उन्होंने डाली। अन्य वस्तुओं के अलावा जीवन जीने के लिए धन बहुत जरूरी होता है। इसलिए महालक्ष्मी

की पूजा करने की प्रथा उन्होंने डाली। राज्य का प्रत्येक नागरिक अपनी और राज्य की सुरक्षा करने में सक्षम हो, इसके लिए उन्होंने शस्त्र चलाना सीखना भी अपने राज्य में अनिवार्य किया।

अवतारी महापुरुष धरती पर आते भी आसानी से नहीं हैं। कृष्ण के जन्म से पहले उनके 8 भाई-बहनों को बलिदान देना पड़ा। कंस ने उन्हें पटक कर मार दिया था। अग्रसेन जी के माता-पिता ने तो संतान की उम्मीद ही छोड़ दी थी। छोटे भाई कुंदसेन के पुत्र के पास सत्ता जाने के आसार बनने लगे थे। किन्तु शिवजी की आराधना के बाद उन्हें एक नहीं दो पुत्र प्राप्त हुए।

अग्रसेन पहले पुत्र थे। दूसरे पुत्र शूरसेन का जन्म कुछ वर्षों बाद हुआ। अग्रसेन जी का जन्म महाभारत युद्ध शुरू हाने से 15 वर्ष पूर्व अश्विन (कुआर) मास के शुक्ल पक्ष की प्रथम तिथि (प्रतिपदा) दिन रविवार को हुआ। उन्होंने 108 वर्ष राज किया और वैशाख पूर्णिमा के दिन अपने पुत्र विभु को राजगद्दी सौंपकर सन्यास ले लिया। वन चले गये और वहीं परलोक सिधार गये।

एक सर्वगुण सम्पन्न राजा में तीन गुणों का होना अनिवार्य माना जाता है और महाराजा अग्रसेन जी चूंकि अवतारी पुरुष थे इसलिए इनमें वो तीनों गुण व्यापकता के साथ विद्यमान थे। ये गुण हैं-वीरता, धर्मप्रेम और दयालुता। अग्रसेन जी की जीवनी पढ़ते ही ये तीनों गुण स्वत: ही सामने आते हैं।

अब आइये इन अवतारी पुरुष महाराजा अग्रसेन जी के बारे में थोड़ा विस्तार से और सिलसिलेवार जानते हैं—

हरियाणा में बीस गांवों का एक छोटा सा राज्य था-प्रतापनगर। यहां के राजा थे सूर्यवंशी बल्लभसेन। प्रतापनगर बहुत खुशहाल राज्य था। यह सरस्वती, इष्टवती और घग्घर नदी के संगम पर बसा था। राज्य में बस एक ही कमी थी। बल्लभसेन के कोई संतान नहीं थी। बल्लभसेन अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करते थे और फिर वे सूर्यवंशी क्षत्रिय थे इसलिए वह दूसरा विवाह नहीं करना चाहते थे। पुरोहित के कहने से राजा बल्लभसेन और उनकी पत्नी भगवती देवी ने शिवजी की आराधना की और शिवजी के वरदान स्वरूप अग्रसेन का जन्म हुआ। अग्रसेन जी के जन्म पर पूरे राज्य में खुशियां मनायी

जाने लगीं, पर बल्लभसेन के छोटे भाई कुन्दसेन को यह खुशियां जरा न भायीं क्योंकि उसने सोच रखा था कि बल्लभसेन के संतान नहीं होने की वजह से उसका पुत्र ही राजा बनेगा। उसका सपना टूट गया था।

अग्रसेन जी का जन्म कुआर सुदी प्रतिपदा के दिन 12 बजे हुआ था। उस समय महेन्द्र काल था। माना जाता है कि इस काल में जन्म लेने वाला व्यक्ति बहुत भाग्यवान और दैविक शक्तियों से पूर्ण होता है। वह शस्त्र-शास्त्र में निपुण और धनधान्य से भी परिपूर्ण होता है।

अग्रसेन जी को शिक्षा-दीक्षा के लिए उज्जैन के आगर नगर में स्थित तांडव्य ऋषि के आश्रम में भेज दिया गया। 14 वर्ष की उम्र में वह शस्त्र-शास्त्र में पारंगत होकर आश्रम से राजमहल वापस आये। इसी समय बल्लभसेन और भगवती देवी की दूसरी संतान ने जन्म लिया। यह भी पुत्र था। इसका नाम शूरसेन रखा गया।

महेन्द्रकाल

महेन्द्रकाल में उत्पन्न व्यक्ति अद्‌भुत क्षमता या शौर्य का धनी होता है। महाभारत के बाद आचार्य वाराह मिहिर ने प्रति दिवसीय काल को महेन्द्रकाल, अमृतकाल, वक्रकाल तथा शून्यकाल- चार भागों में विभक्त कर समय के शुभाशुभत्व पर विचार किया है। आचार्य वाराह मिहिर के अनुसार इन काल विभागों में महेन्द्रकाल खण्ड अति शुभ, मंगल, विजयप्रद तथा सभी कार्यों में पूर्ण सिद्धि देने वाला है।

इसी बीच राजा बल्लभसेन को पांडवों की ओर से युद्ध में भाग लेने का निमंत्रण प्राप्त हुआ। बल्लभसेन पांडवों की ओर से युद्ध करने चल पड़े। पिता की रक्षा के लिए अग्रसेन जी भी उनके साथ हो लिए। बल्लभसेन ने जाते-जाते छोटे भाई कुन्दसेन को राज्य की बागडोर सौंप दी थी। कुन्दसेन और उसका बेटा दोनों ही अय्याश और गलत आचरण करने वाले थे।

महाभारत के युद्ध में नौ दिन बाद राजा बल्लभसेन वीरगति को प्राप्त हुए। पिता की मृत्यु पर अग्रसेन बहुत व्याकुल हुए, लेकिन निराश नहीं हुए। तब भगवान श्रीकृष्ण ने उन्हें संसार के नश्वर होने का ज्ञान दिया। अग्रसेनजी ने

पूरे 18 दिन तक पांडवों का साथ दिया। महाभारत युद्ध समाप्त होने के बाद विदाई के समय जब युधिष्ठिर अग्रसेन जी का धन्यवाद कर रहे थे तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा— हे युधिष्ठिर! अग्रसेन जी तो साक्षात भगवान विष्णु के अवतार हैं। महाभारत युद्ध के बाद द्वापर युग समाप्त हो जाएगा और कलयुग का आगमन होगा। कलयुग में धर्म की स्थापना के लिए ही अग्रसेन जी ने अवतार लिया है।

अग्रसेनजी जब अपने राज्य प्रतापनगर वापस आये तो यहां का माहौल ही बदला हुआ था। सेनापति से लेकर तमाम दरबारी अधिकारी भ्रष्ट और अय्याश हो चुके थे। कुंदसेन ने सेनापति को आदेश देकर अग्रसेनजी को उनके महल में बंदी बना दिया। अग्रसेनजी की मां भगवती देवी भी बुरे दिन काट रही थीं। विलाप करती रहती थीं। अग्रसेन बहुत व्याकुल हुए। ऐसी

प्रमाणिक जीवनवृत

'अग्रसेन उपाख्यान' तथा 'महालक्ष्मी व्रत कथा' के आधार पर अग्रसेन जी का जीवनवृत्त प्रामाणिक माना जाता है। उनका काल महाभारत के समय का ही माना जाएगा क्योंकि 'महालक्ष्मी व्रत कथा' तथा 'अग्रसेन उपाख्यान' दोनों में ही उनका काल कलियुग का प्रारंभ माना गया है। राजा परीक्षित के समय में ही कलि का प्रवेश हो चुका था। 'अग्रसेन उपाख्यान' के अनुसार महाराजा अग्रसेन का जन्म परीक्षित के जन्म से पंद्रह वर्ष पूर्व का था और कलि के प्रारंभ में उन्होंने अपने नवीन गणराज्य की स्थापना की तथा एक सौ आठ वर्ष तक राज्य करने के बाद स्वयं तपस्या करने वन में चले गये। महर्षि जेमिनी प्रणीत 'जय महाभारत' में भी महाराजा अग्रसेन की कथा जन्म, परिचय कृति आदि का सम्यक विवेचन हुआ है।

अग्रवंश वैश्यानुकीर्तनम

अग्रवंश वैश्यानुकीर्तनम एक ग्रंथ है, जो वास्तव में भविष्योत्तर पुराण के केदारखंड का षोडषोध्याय है। यह ग्रंथ वाराणसी के वृहत पुस्तकालय के सरस्वती भंडार में मिला। सरस्वती भंडार में हस्तलिखित कृतियां रखी गयी हैं। साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चंद के पिता गोपालदास के काल में यह ग्रंथ नजर में आया। इसमें पृष्ठ 13 से 18 तक अग्रवंश की कथा है। इसी जानकारी के आधार पर भारतेन्दु हरिश्चंद ने 'अग्रवालों की उत्पत्ति' शीर्षक से नौ पृष्ठों की एक पुस्तिका लिखी, सन् 1893 में यह पुस्तिका प्रकाशित हुई।

परिस्थितियों में ईश्वर ही सहारा होता है। उन्होंने ईश्वर से मदद मांगी और अचानक सुमते सामने आया। वह बल्लभसेन के दौर का प्रशासनिक अधिकारी था। उसने अपनी जान की बाजी लगा दी और अग्रसेन जी को मुक्त करा लिया। (देखें फुट नोट-1)

अग्रसेनजी छिपते-छिपाते, बचते-बचाते किसी तरह गर्ग मुनि के आश्रम में पहुंचे। गर्ग मुनि का आश्रम इष्टवती नदी के दूसरे तट पर था। गर्ग मुनि ने उनका स्वागत किया, उन्हें बहुत सांत्वना दी। गर्ग मुनि ने उन्हें महालक्ष्मी की उपासना करने को कहा। अग्रसेनजी ने महालक्ष्मी की पूजा शुरू की। उनकी श्रद्धा से प्रसन्न होकर ठीक दीवाली की रात महालक्ष्मी प्रकट हुईं। उन्होंने अग्रसेनजी को वरदान दिया कि 'मैं सदा तुम्हारे कुल में प्रतिष्ठित रहूंगी।'

महालक्ष्मी ने ही अग्रसेन जी को यह राज बताया कि उन्होंने जिस स्थान पर बैठकर उनकी उपासना की है उस जगह धरती में अपार सोना गड़ा है। यह वह बचा हुआ सोना है जो सौ अध्वमेघ यज्ञ करने के बाद राजा मरूत के पास बचा था। राजा मरूत ने ही इसे यहां दबा दिया था। महालक्ष्मी ने ही अग्रसेन जी को बताया कि धरती से प्राप्त धन का मालिक राजा ही होता है। लक्ष्मी जी ने अग्रसेन जी को निर्देश दिया कि इस धन से इस बीहड़ में नये राज्य की स्थापना करो।

अग्रसेनजी अग्रोहा की धरती पर नये नगर की स्थापना में लग गये। गर्ग

मुनि के शिष्यों ने उनकी पूरी मदद की। ऊबड़-खाबड़ धरती को समतल किया गया। सड़कें और गलियां बनायी गयीं। पेड़ लगाये गये। तालाब बनाये गये। बाग-बगीचे बनाये गये। महल और अन्य भवन बनाये गये। मंदिर और धर्मशालायें बनायी गयीं। देखते ही देखते उस नगरी में पक्षी चहकने लगे, बाग-बगीचे महकने लगे। मंदिर में शंख और घंटे बजने लगे। धर्मशालाओं में राहगीर ठहरने लगे। तालाब हवाओं को ठंडा करने लगे, वृक्ष फल और छाया देने लगे। कोयल कूकने लगी, मोर नाचने लगे। खेतों में फसल लहलहाने लगी। पशु दूध की नदियां बहाने लगे। सुख, शांति और समृद्धि की बयार बहने लगी। आनंदमयी वातावरण का यह नगर 'अग्रनगर' कहलाया। (देखें फुट नोट-2)

अग्रनगर तैयार होने के बाद अग्रसेन जी ने अपने राज्य के विस्तार की बात सोची। लेकिन गर्ग मुनि ने उन्हें विवाह करने की सलाह दी। उन्होंने ही कहा कि वह नागकन्या माधवी से विवाह करें क्योंकि नागराजा महोधर से सम्बध होने के बाद उनकी शक्ति बढ़ेगी। गर्ग मुनि की बात मानकर अग्रसेन जी नागकन्या के स्वयंवर में शामिल होने के लिए असम की ओर चल पड़े। असम पहुंचना आसान नहीं था। रास्ता लंबा, कठिन और अनजान था। पर

सत्यकेतु विद्यालंकार की पुस्तक

भारतेन्दु हरिश्चंद की नौ पेज की पुस्तिका 'अग्रवालों की उत्पत्ति' प्रकाशित होने के बाद अखिल भारतीय मारवाड़ी समाज ने डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार से अग्रवाल समाज के पूर्वजों का इतिहास लिखने को कहा। विद्यालंकार जी ने देश-विदेश से सामग्री एकत्र की और 200 पृष्ठों की एक पुस्तक तैयार की 'अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास' लेकिन डॉ. परमेश्वरी लाल गुप्ता ने विद्यालंकार के इस शोध को नकार दिया। डॉ. गुप्ता प्राचीन इतिहास के विद्वान थे। इसके बाद अखिल भारतीय अग्रवाल सम्मेलन ने डॉ. स्वराजमणि अग्रवाल को अग्रवाल जाति अथवा समाज का इतिहास लिखने की जिम्मेदारी दी। डॉ. स्वराजमणि ने एक पुस्तक 'अग्रसेन, अग्रोहा, अग्रवाल' लिखी जो प्रमाणिक ग्रंथ माना गया।

मुनि श्री का आदेश और राज्य के विस्तार की इच्छा ने उनके कदम नहीं रुकने दिये। वह स्वयंवर में पहुंचे। तमाम शर्ते पूरी करने और वाद-विवाद में जीतने के बाद उनका विवाह नाग कन्या माधवी से हो गया। इस तरह आर्य और शैव सभ्यता का मिलन हुआ। नागराजा महोधर ने इस खुशी में एक नया नगर 'अगरतला' बसाया। (देखें फुट नोट-3 व 5)

नागकन्या माधवी से विवाह के पश्चात् अग्रसेन जी ने अपने राज्य में 18 राज्यों को मिलाया। आज भी ये राज्य जिलों के रूप में मौजूद हैं। इनमें दिल्ली समेत उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पंजाब व राजस्थान के जिले हैं। आज भी यहीं पर सबसे ज्यादा अग्रवाल रहते हैं। ये जिले हैं- हिसार, तोसाम, सिरसा, नारनौल, रोहतक, जीन्द, पानीपत, कैथल, जगाधरी, नाभा, अलवर, सीकर, झुंझुनु, चुरू, भिवानी, फतेहाबाद, जयपुर और आगरा। अब अग्रनगर एक शक्तिशाली आग्रेय गणराज्य के रूप में स्थापित हो गया था और अग्रसेन जी महाराजा के रूप में प्रतिष्ठित हो गये थे। अन्य राजा भी अग्रसेन जी की कर्मठता की प्रशंसा करते थे।

गोत्र

गर्ग, गोभिल, गवाल, वात्सल, कांसल, सिंहल, मंगल, महल, तिंगल, ऐरन, टेरन, टिंगल, वित्तल, मित्तल, तन्दुल, तॉयल, गोईल और गवन उपर्युक्त गोत्र नाम अग्रवालों की उत्पत्ति से उद्धृत हैं। अखिल भारतीय अग्रवाल सम्मेलन ने 1974-1975 में गोत्रों के नामों में सुधार करके प्रामाणिक रूप से 18 गोत्रों के नाम दिये वे इस प्रकार हैं- गर्ग, गोयल, गोयन, बंसल, कंसल, सिंहल, मंगल, जिंदल, तिंगल, ऐरण, धारण, मधुकुल, बिन्दल, मित्तल, तॉयल, मंदल, नागल, कुच्छल।

नागकन्या महारानी माधवी से अग्रसेन जी के 18 पुत्र हुए। ऐसा 'अग्रसेन उपाख्यान' में लिखा है और हम इसी को आधार मानकर चल रहे हैं, इसलिए इसी बात को लेकर आगे बढ़ेंगे, वरना वैसे तो 'अग्रवैश वैश्यानुकीर्तनम' के अनुसार राजा अग्रसेन जी की 18 रानियां, 47 पुत्र व 16 पुत्रियां थी। इसमें रानियों, पुत्रों व पुत्रियों के नाम भी दिये गये हैं। पर हम एक

रानी और 18 पुत्रों के आधार पर ही आगे बढ़ते हैं।

महाराजा अग्रसेन ने गौड़ ब्राह्मण को अपना पुरोहित बनाया। गौड़ पुरोहित बहुत बुद्धिमान था। उसे वेदों का भी बहुत ज्ञान था। पुरोहित के सहयोग से महाराजा अग्रसेन की कीर्ति में बहुत वृद्धि हुई। अग्रवाल समाज के लोग आज भी गौड़ को ही अपना पुरोहित मानते हैं।

क्षत्रिय से वैश्य बनना

इतिहास में सम्राट अशोक का अहिंसावादी हो जाना बड़ी घटना मानी जाती है। लेकिन महाराजा अग्रसेन जी का हिंसा के विरोध में अपना क्षत्रिय वर्ण त्याग देना उससे भी बड़ी घटना है। वह बात अलग है कि इतिहासकारों ने इस ओर ज्यादा ध्यान नहीं दिया है।

सम्राट अशोक का मन कलिंग की लड़ाई के बाद द्रवित हुआ। इस युद्ध में सैकड़ों सैनिक मारे गये थे। लेकिन महाराजा अग्रसेन का मन यज्ञ में दी जाने वाली पशुबलि से ही द्रवित हो गया। सैनिक तो इंसान थे। अपनी मर्जी से युद्ध में अपना कर्त्तव्य निभा रहे थे। इसमें शहीद हुए पर पशु तो बेबस,

जैन अग्रवाल

अग्रवाल समाज यों तो वैष्णव ही था और है लेकिन अग्रोहा के एक राजा दिवाकर के जैन धर्म स्वीकार कर लेने से राज्य के अधिकांश अग्रवाल जैनी हो गये। राजा दिवाकर महाराजा श्रीनाथ के बड़े पुत्र थे और श्रीनाथ अग्रसेनजी की छटी पीढ़ी में थे। राजा दिवाकर की भेंट जैन मुनियों से हुई और वह भगवान महावीर के बारे में जानकर उनसे बहुत प्रभावित हुए। धीरे-धीरे उन्होंने जैन धर्म अपना लिया था।

अग्रोहा से निकल कर जो अग्रवाल जहां जाकर बसे वहां का विशेषण उनके साथ जुड़ गया। जैसे जो लोग राजस्थान के मारवाड़ क्षेत्र में आकर बस गये, वे मारवाड़ी कहलाये। केड में बसने वाले केडिया, कानोड में बसने वाले कनोडिया कहलाये। इसी तरह और भी विशेषण अग्रवालों के साथ जुड़े। जिन के साथ विशेषण नहीं जुड़े वे सब देशवासी अग्रवाल कहलाये।

बेजुबान होते हैं, अकारन उनकी हत्या कर दी जाती है। यज्ञ अथवा पूजा में उनकी बलि चढ़ा दी जाती है।

हुआ यों कि राज्य के गठन और विस्तार के बाद महाराजा अग्रसेन ने जनता की खुशहाली के लिए 18 प्रकार के यज्ञ करने का संकल्प लिया। तब यज्ञों से ही किसी राज्य की प्रतिष्ठा आंकी जाती थी। उन्होंने 17 यज्ञ तो पूरे विधि-विधान से किये। लेकिन 18वें यज्ञ में उन्होंने पशुबलि देने से इन्कार कर दिया। वास्तव में 17 यज्ञों में पशुबलि दे देकर उनका मन निरीह पशुओं के प्रति करुणा से भर गया था। उनके यज्ञ में बलि से इंकार करने पर ब्राह्मणों-पंडितों को बहुत गुस्सा आया। उन्होंने महाराजा की प्रतिष्ठा का ध्यान नहीं रखा और महाराजा के निर्णय का विरोध किया। महाराजा ने नम्रता पूर्वक कहा कि अगर इसके लिए कोई दंड विधान है तो मैं उसे भोगने के लिए तैयार हूं, पर यज्ञ में पशुबलि कदापि नहीं दूंगा। मुझे ऐसी प्रतिष्ठा नहीं चाहिए जो किसी के प्राण लेकर प्राप्त हो। ब्राह्मणों-पंडितों ने तब फैसला सुनाया कि अब महाराजा को क्षत्रिय वर्ण त्याग कर वैश्य वर्ण स्वीकारना होगा। महाराजा ने बिना कोई तर्क दिये हाथ जोड़कर उनका निर्णय स्वीकार किया और वैश्यवर्ण स्वीकार कर लिया। 18वां यज्ञ बिना पशुबलि के सम्पन्न हुआ।

इसके बाद अग्रसेन जी ने पूरे राज्य में अहिंसात्मक ढंग से रहने और शाकाहारी बनने का नियम लागू कर दिया। अहिंसा और शाकाहार जब लोगों के जीवन में उतरा तो राज्य में कानून व्यवस्था में और सुधार आया। लोगों के रहन-सहन और व्यवहार में सकारात्मक परिवर्तन आने से राज्य में और खुशहाली आयी।

वैश्यवर्ण धारण करने के बाद महाराजा अग्रसेनजी ने अब वैश्यवंश की उत्कृष्टता कायम रखने के लिए काम शुरू किया। उन्होंने 18 यज्ञ कराने वाले पुरोहितों के नाम पर 18 गोत्रों की स्थापना की और अपने गणराज्य के 18 प्रतिनिधियों के एक-एक गोत्र से सम्बद्ध करके उन्हें वंश का गौरव प्रदान किया। उन्होंने गोत्रों को लेकर विवाह संबंधी नियम भी लागू किये। इन नियमों के लागू किये जाने के बाद वैश्य के लिए अपना गोत्र छोड़कर बाकी 17 गोत्रों में ही विवाह किये जाने की बाध्यता हो गयी। यह विवाह की नयी

परंपरा थी। इससे पहले निकट संबंधों में भी विवाह हो जाते थे। (देखें फुटनोट-4)

महाराजा अग्रसेन जी के शासन का आधार अहिंसा, मानवता और समाजवाद था। उन्होंने राज्य के नागरिकों में समता और ममता का रिश्ता विकसित किया था। परोपकार और भाईचारे की भावना हर एक नागरिक में थी। उनके राज्य का नियम था कि अगर कोई बाहर का व्यक्ति राज्य में आकर बसना चाहता है तो राज्य के अन्य परिवार उसे एक रुपया और एक ईंट भेंट करेंगे। इस तरह उसका आवास भी बन जाएगा और व्यापार भी शुरू हो जाएगा। राज्य की जनता यह परोपकार करने में उस आगुन्तक परिवार के धर्म और वर्ण का भेद नहीं करती थी इसलिए जनता में संतुष्टि का भाव था। अपराध नहीं थे। अग्र नगर में अन्य व्यवसायों के अलावा कृषि और पशुधन

कैसा बना अग्रवाल शब्द

प्रसिद्ध इतिहासकार नगेन्द्रनाथ बसु के मत में ऋग्वेद में वर्णित 'पणि' जाति ही वैश्य वर्ण की वणिक जाति है। इनका जीवन कृषि, वाणिज्य, गो-पालन और बैंकिंग इन्हीं व्यवसायों पर निर्भर था। इसी पणि जाति को पाश्चात्य इतिहासकारों ने 'फिनिक' कहा। प्राचीन ग्रीक और जर्मनों के बीच यह जाति फोनिक (Phonik), फेनिक (Phenik) और फणिक (Phinik) नाम से प्रचलित थी। 500 वर्ष ईसापूर्व हिरोडोट्स ने लिखा था कि फेनिक गुण ही आदि वणिक के रूप में प्रचलित थे। यह 'वणिक' याज्ञिक आर्यों के साथ मिलकर कालान्तर में 'विश' या 'विट्' के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्होंने अपना कर्म व्यवसाय (जो अहिंसा, कृषि, गो-पालन और वाणिज्य पर निर्भर था) और अपनी संस्कृति को सदा अक्षुण्य रखा। यही जाति कालांतर में 'अग्रवाल' कहलाई, जिसके कुल पुरुष महाराजा अग्रसेन थे, जिनका मूल निवास 'अग्रोहा' का वह समृद्ध नगर था, जो आज जिला हिसार में एक खेड़े के रूप में विद्यमान है।

अग्रवाल जाति के साथ अग्रवाल शब्द उसी समय से जुड़ा जब से वैश्य वणिकों को अपना देश छोड़कर अन्यत्र जाकर बसना पड़ा 'अग्रोहा वाले' कहते-कहते वे सब अयरवाले, अगरवाले और फिर अग्रवाल हो गए।

कमाई के मुख्य स्रोत थे। हल, बैल, चक्र वेदी राजचिन्हों के रूप में प्रतिष्ठित थे।

महाराजा अग्रसेन जी ने यज्ञ में हिंसा का ऐसा विरोध किया कि आज तक यज्ञ में बलि नहीं दी जाती। अग्रनगर में लोग मांसाहारी नहीं थे। वे पशु-पक्षियों से प्रेम करते थे। पशु-पक्षियों की सुरक्षा के लिए सरकारी प्रबंध भी किये गये थे। लेकिन महाराजा ने राज्य के प्रत्येक व्यक्ति यानि घर के मुखिया, वृद्ध, बालक और महिलाओं के लिए भी शस्त्र धारण करने का नियम बना दिया था। हालांकि पहले केवल क्षत्रिय ही शस्त्रधारण कर सकते थे। महाराजा ने परंपरागत नियम इसलिए तोड़े ताकि हर व्यक्ति अपनी रक्षा करने में सक्षम हो। पहले क्षत्रिय ही युद्ध लड़ते थे, बाकी जनता अकर्मण्य ही रहती थी। उसका भविष्य राजा की हार या जीत पर निर्भर रहता था। अब हरेक के लिए शस्त्र चलाना, सीखना अनिवार्य कर दिया गया था। यही कारण रहा कि उनकी जनता अथवा अग्रवाल जाति विदेशी शत्रुओं से अपनी रक्षा करने में सफल रही। महाराजा अग्रसेनजी ने अपने राज्य में शिक्षा को भी अनिवार्य कर दिया था। उन्होंने कला, साहित्य को बहुत प्रोत्साहित किया।

महाराजा अग्रसेन जी ने अपने स्वभाव, व्यवहार व शासन से लोगों में ऐसी भावना भरी कि वे कहीं से आये हों उसी राज्य को अपना देश मानते थे और महाराजा को अपना पिता। अग्रसेन जी ने जनता का मनोबल बढ़ाने के लिए विवाह में दूल्हा को घुड़चढ़ी के दौरान छत्र लगाने और चंवर डुलाने की छूट दी। इस तरह एक दिन दूल्हा भी खुद को राजा महसूस कर सकता था। अग्रवाल समाज में आज भी यह प्रथा जारी है। अग्रसेन जी ने धर्म-संस्कृति के उत्थान और दान-पुण्य पर भी बहुत जोर दिया था। अग्रवाल समाज आज भी इस पर बहुत ध्यान देता है।

महाराजा अग्रसेन जी की शासन व्यवस्था लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आधारित थी। जिसमें जनता सर्वोपरि थी। राजा भी जनता की इच्छा से चुना जाता था। राजा चुने जाने पर वह शपथ लेता था कि अगर मैं प्रजा से द्रोह करूं तो मेरा धन, मेरी आयु और यश सब नष्ट हो जाये। वह यह भी शपथ लेता था कि मैं जो भी काम करूंगा मंत्रिपरिषद की सलाह से ही करूंगा।

उन्होंने हर एक नगर और ग्राम का एक अधिपति बनाया जिसे 'ग्रमिक' कहते थे। फिर 10 ग्रामों, 20 ग्रामों, 100 ग्रामों और फिर 1000 ग्रामों के अधिपति बनाये। इन्हें क्रमश: दशिक, विशाधिप, सतपाल और सहस्त्रपति नाम दिया गया था। इन सब का काम भी निर्धारित किया गया था। जैसे ग्रमिक गांव में समस्त कार्यों को करवाता था। अगर कोई समस्या आती थी तो दशिक को बताया जाता था। दशिक इसकी जानकारी विंशाधिप को देता था। विशाधिप सारी जानकारी सतपाल को। सतपाल इसकी जानकारी सहस्त्रपति को देता था और फिर सहस्त्रपति बात राजा तक पहुंचाता था। इस तरह राजा अथवा सरकार गांव तक की समस्याओं से अवगत रहती थी और सब मिलकर समस्याओं को दूर करते थे। प्रत्येक नगर में एक-एक सर्वार्थ चिंतक शासक की नियुक्ति भी की जाती थी। ये सारे पदाधिकारी राज्य की

बीसा व दस्सा अग्रवाल

इतिहासकारों के अनुसार महाराजा अग्रसेन जी के बाद अग्रवाल समाज ने 20 नियमों का पालन करने पर जोर दिया। जो लोग इन 20 नियमों का पूर्णतया पालन करते रहे उन्हें बीसा कहा जाने लगा और जो लोग सभी नियमों का पालन नहीं करते, उन्हें दस्सा कहा गया। वे 20 नियम निम्नलिखित हैं—

1. वाणिज्य व्यवसाय 2. गौ-रक्षा एवं पशुओं के प्रति करुणा भाव 3. कृषि 4. दानशीलता एवं लक्ष्मी की उपासना 5. अहिंसा का पालन 6. निर्धन एवं असहायों की सेवा, 7. धर्म में आस्था एवं परम्पराओं का पालन, 8. खान-पान की शुद्धता (शाकाहारी भोजन) 9. भारतीय वेशभूषा-आचार-विचार 10. दुर्गुणों एवं व्यसनों का त्याग 11. आर्थिक दृष्टि से कमजोर बंधुओं की सहायता 12. ज्ञान के प्रति श्रद्धा 13. अतिथि सत्कार 14. सनातन हिन्दू धर्म एवं संस्कृति के आधार पर जीवन 15. रक्त शुद्धता (स्वगोत्र छोड़कर अपनी ही जाति में विवाह) 16. आय को चार भागों में बांटना 17. सरल, सादा, जीवन तथा सत्य प्रियता 18. अल्पभाषी एवं विनम्रता 19. साहस, आत्मबल एवं दृढ़ संकल्प शक्ति 20. सामाजिक नियमों में आस्था रखते हुए पालन करना।

सभा में सभासदों के रूप में शामिल होते थे।

जनता से सम्पर्क बनाये रखने के लिए कुलों को महत्व दिया। कुल वृद्ध ही इनके मुखिया होते थे। ये अपने कुलों को नियंत्रण में रखते थे। उनमें फूट नहीं पड़ने देते थे।

महाराजा अग्रसेन जी के शासन में चारों ओर शांति और संतुष्टि थी। अग्रसेन जी हालांकि वैदिक धर्मावलम्बी थे लेकिन अन्य धर्मों के लोग भी स्वतंत्रता पूर्वक रहते थे। मुख्यरूप से लक्ष्मी, विष्णु, शिव, कार्तिकेय, देवी-देवताओं, प्रकृति में सूर्य, नदी, वृक्ष, आकाश की पूजा होती थी।

शासन द्वारा तालाब कुओं और झीलों का निर्माण कराया जाता था। खेतों में फसल अच्छी हो इसके लिए भी शासन व्यवस्था करता था। भूमि का मालिक अन्न के रूप में राजा को कर (टैक्स) देता था। बाल विवाह पर रोक थी। विवाह में वधू की इच्छा सर्वोपरि होती थी। विधवाओं की सुख सुविधाओं का ध्यान भी सरकार ही रखती थी। स्त्रियां शिक्षित व स्वतंत्र थी। राजकाज में परामर्श देती थी।

महाराजा अग्रसेन जी के राज्य में इतनी खुशहाली थी कि उनकी शासन प्रणाली की प्रशंसा दूसरे राज्यों में भी होने लगी। कहा जाता है कि अग्रसेन जी का यश इतना फैला कि इंद्र परेशान हो उठे। उन्हें अग्रसेन जी से ईर्ष्या होने लगी। इंद्र ने अग्रसेन जी के राज्य में वर्षा बंद कर दी। इस पर अग्रसेन जी ने कुओं, तालाबों और बावड़ियों से पानी की कमी पूरी करायी। फसलों के नुकसान की भरपाई के लिए अपने खजाने खोल दिये। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए गर्ग मुनि ने अग्रसेन जी से महालक्ष्मी की तपस्या करने को कहा। उन्होंने तपस्या की। महालक्ष्मी जी ने दर्शन दिये और उनसे वर मांगने को कहा। अग्रसेन जी ने वर मांगा कि इंद्रदेव मेरे राज्य में अशांति फैलाना बंद करें। महालक्ष्मी जी ने कहा, तथास्तु। उन्होंने यह भी आशीर्वाद दिया कि पृथ्वी तुम्हारे वंश से पूरित होगी, यह कुल तुम्हारे नाम से जाना जाएगा और अग्रपंथी पूजा तीनों लोकों में श्रेष्ठ मानी जाएगी। इसीलिए अग्रवाल समाज में महालक्ष्मी की पूजा प्राथमिकता के साथ की जाती है।

अग्रसेन उपाख्यान

'अग्रसेन उपाख्यान' भोजपत्र पर संस्कृत में लिखे हुए 1400 श्लोकों के ग्रंथ 'जय भारत' का हिन्दी अनुवाद है। इसमें महाराजा अग्रसेनजी के जन्म से लेकर संन्यास तक के जीवन का सजीव ढंग से वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ के भोजपत्र आपस में जुड़े हुए हैं। इनको अलग करने के लिए इन्हें पानी से भिगोना पड़ता है। वैसे भी इन भोजपत्रों को प्रतिमाह 'जल स्नान' कराना पड़ता है ताकि वे टूट न जाएं।

प्रदर्शनी लगाकर इन भोज पत्रों को लोगों के दर्शनार्थ रखा गया था। ये भोजपत्र साधनारत एक तपस्वी के पास से मिले थे। वह असम में ब्रह्मसर के पास कुटिया बनाकर रहते थे। महाराष्ट्र निवासी श्री राम गोपाल अग्रवाल 'बेदिल' 9 अगस्त, 1991 को उनसे मिले और नम्र निवेदन कर ये भोजपत्र उनसे प्राप्त किये और उनमें से अग्रसेन उपाख्यान का 2005 में हिन्दी में अनुवाद किया गया तथा 'अग्रभागवत' शीर्षक से प्रकाशित कराया गया।

इससे पता चलता है कि महर्षि वेदव्यास के पांच शिष्यों में से एक जेमिनी ऋषि ने 'श्रीमद्भागवत' महापुराण के एक भाग 'जय भारत' में 27 अध्यायों के अंतर्गत 1400 श्लोकों की रचना की थी। इस प्रकार 'जय भारत' श्रीमद्भागवत का अंतिम कथानक है। वास्तव में इसी 'जय भारत' का अनुवाद अग्रसेन उपाख्यान है। ये श्लोक बिना किसी नम्बर के निरंतरता से लिखे गये हैं। इसमें जेमिनी ऋषि जन्मेजय को महाराजा अग्रसेन की कथा सुनाते हैं। यह कथा सुनने का भी एक संदर्भ है।

परीक्षित की मृत्यु से दु:खी जन्मेजय ने सर्प यज्ञ करके दुनियाभर के सांपों को समाप्त करने का बीड़ा उठाया। तमाम सांप आ-आकर उसमें अपने प्राणों की आहुति डालने लगे। लेकिन तक्षक नहीं आया। पता चला कि तक्षक जान बचाने के लिए इन्द्र के सिंहासन से चिपटा हुआ है। जन्मेजय ने ऋषियों से कहा कि इन्द्र को सिंहासन समेत तक्षक की आहुति डाल दी जाये। इससे तीनों लोकों में हाहाकार मच गया। तब जेमिनी ऋषि ने जन्मेजय को समझाया कि राजा परीक्षित का समय पूरा हो गया था। वह मृत्यु को प्राप्त हुए। इस पर तुम क्रोध मत करो, महाराजा अग्रसेन से प्रेरणा लो जिन्होंने अपने वर्ण तक का त्याग कर दिया पर हिंसा नहीं की। वह क्षत्रिय थे पर उन्होंने वैश्य वर्ण धारण कर लिया।

परशुराम से युद्ध

महाराजा अग्रसेन ने भले ही वैश्य वर्ण धारण कर लिया था लेकिन उनमें योद्धा मौजूद था, जो किसी की भी चुनौती से भयभीत नहीं होता था। योद्धा होने के कारण भी उनकी यश-कीर्ति फैली थी। एक बार महर्षि परशुराम से उनका युद्ध हो गया।

परशुराम यो तो त्रेतायुग में हुए थे पर वह कालजयी थे। द्वापर युग में उन्होंने कर्ण को शस्त्र चलाना सिखाये थे। उन्होंने धरती से क्षत्रियों का विनाश करने का व्रत लिया था।

हुआ यों कि एक बार महाराजा अग्रसेन जी योद्धाओं की वेशभूषा में अपने लाव लश्कर के साथ जा रहे थे। परशुराम की नजर पड़ी तो उन्होंने अग्रसेन

जी को क्षत्रिय राजा समझ कर ललकारा। अग्रसेन जी परशुराम जी को हुई गलतफहमी को समझ गये। मन ही मन मुस्कराये। पर सीधे बता देना कि मैं क्षत्रिय नहीं हूँ, कायरता लगती। अत: उन्होंने सोचा कि चुनौती स्वीकार कर यह भेद खोला जाए। उन्होंने चुनौती स्वीकार कर ली। बात आत्मसम्मान की भी थी। अत: युद्ध शुरू हो गया और 14 दिन तक चला। अंत में परशुरामजी को ही बोध हुआ कि यह राजा क्षत्रिय नहीं हो सकता क्योंकि कोई भी क्षत्रिय उनके आगे टिक नहीं सकता। उन्होंने स्वयं ही अचानक युद्ध रोक दिया और पूछा कौन हो तुम, तुम्हारा वर्ण क्या है। अग्रसेनीजी आदर से बोले, मैं वैश्य हूँ, पर आपने ललकारा तो मैंने चुनौती स्वीकार करली।

परशुराम कुपित हुए। उन्होंने कहा, तुमने मुझसे कपट किया है। यह अपराध है। मैं तुम्हें श्राप देता हूँ कि तुम्हारी वंश वृद्धि नहीं होगी। युद्ध बंदी की घोषणा करके परशुराम वापस चले गये। श्राप से महाराजा अग्रसेनजी क्षुब्ध हुए। उन्होंने मां लक्ष्मी की आराधना की। मां प्रकट हुई और उन्होंने आशीर्वाद दिया कि परशुरामजी का श्राप प्रभावी नहीं होगा।

नागपूजा

अग्रवाल समाज में यों तो विशेष रूप से महालक्ष्मी की पूजा की जाती है। महालक्ष्मी कुल देवी हैं। दीपावली पर तो महालक्ष्मी की विशेष पूजा होती है लेकिन गणेशजी, शिवजी, कुबेरजी, रुद्रजी, सूर्य, चंद्र, अम्बिका व नव ग्रहों की भी पूजा होती है। स्वास्तिक चक्र, शुभ लाभ जैसे प्रतीक भी पूजे जाते हैं और रक्षाबंधन, होली, दीवाली, दौज, करवा चौथ जैसे त्योहारों पर नागों के प्रतीक चिह्नों की भी पूजा होती है। वास्तव में पाताल लोक के अधिपति होने के कारण नागों को देवता के रूप में लिया जाता है।

महाराजा अग्रसेन का विवाह नागवंशियों में हुआ था। उन्होंने अपने 18 पुत्रों का विवाह भी नागराजा दशानन की 18 कन्याओं से किया था। माना जाता है कि यह नागवंशी सर्प पूजक थे। ये अपने अभूषणों पर भी किसी न किसी रूप में सर्प अंकित करते थे। रावण के पुत्र मेघनाद की पत्नी सुलोचना नाग कन्या थी। अर्जुन की भी एक पत्नी उलूपी नागकन्या थी। माना जाता है

कि नाग जाति दक्षिण के नाग लोक में रहती थी। नाग जाति के लोग सम्पन्न और शक्तिशाली थे। इन्होंने देश के अन्य भागों जैसे नागपुर, नागरकोइला, नागपट्टन, नागौर, नागदा, अनंतनाग में अपना राज्य स्थापित किया।

महाराजा अग्रसेन जी के 18 पुत्रों की पत्नियों को लेकर नाग कन्याओं के बारे में एक कथा प्रचलित है। पर ऐतिहासिक व शास्त्रीय आधार पर इसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता। कथा यों है कि-विवाह के बाद जब अग्रसेन जी के पुत्रों की पत्नियां मां नहीं बन पायीं तो राज्य में चिंता व्याप्त हुई और इसका कारण खोजा गया। पता चला कि ये नाग कन्याएं रात्रि में सर्पणी के चोले में रहती हैं और दिन में नारी वेश में तो संतान कैसे हो।

महाराजा अग्रसेन जी के भांजे जसराज ने इस समस्या का हल सुझाया। जसराज योगी थे और बहुत विद्वान थे। उन्होंने कहा कि सावन सुदी पंचमी को ये नाग कन्याएं रात को सर्पणी का चोला उतार कर नदी में स्नान करती हैं। अगर उस समय कोई इनके चोलों को लेकर अग्नि में समा जाये तो फिर ये कभी सर्पणी का रूप ग्रहण नहीं कर सकेंगी। इस काम के लिए कौन तैयार होता। अंततः योगी जसराज ने ही यह चुनौती स्वीकारी। वह चोले लेकर अग्नि में समा गये। स्नान के बाद नाग कन्याएं चोले नहीं देखकर विलाप करने लगी। तब महाराजा अग्रसेन जी ने इन्हें आश्वासन दिया कि तुम्हें पहुंचे इस कष्ट के बदले तुम्हें यानि तुम्हारे नागवंश को सदा पूजनीय

18 गोत्र

महाराजा अग्रसेनजी को 18 यज्ञ कराने वाले 18 पुरोहित ऋषियों के नाम पर दिये गये गोत्रों के नाम इस प्रकार हैं-गर्ग, गोभिल, गवाल, वात्सल, कांसल, सिंहल, मंगल, महल, तिंगल, ऐरन, टेरन, टिंगल, वित्तल, मित्तल, तन्दुल, तॉयल, गोईल और गवन। उपर्युक्त गोत्र नाम 'अग्रवालों की उत्पत्ति' से उद्धृत हैं। अखिल भारतीय अग्रवाल सम्मेलन ने 1974-75 में गोत्रों के नामों में सुधार करके प्रामाणिक रूप से 18 गोत्रों के नाम दिये वो इस प्रकार हैं- गर्ग, गोयल, गोयन, बंसल, कंसल, सिंहल, मंगल, जिंदल, तिंगल, ऐरण, धारण, मधुकुल, बिन्दल, मित्तल, तॉयल, मंदल, नागल, कुच्छल।

बनाकर सम्मानित किया जाता रहेगा और सावन सुदी पंचमी को नाग पंचमी कहा गया और नागों की पूजा की परम्परा पड़ी।

18 रानियां, 47 पुत्र, 16 पुत्रियां

'अग्रवंश वैश्यानुकीर्तनम' के अनुसार महाराजा अग्रसेन जी के 18 रानियां थीं। उनके 47 पुत्र और 16 पुत्रियां थीं। उनकी रानियों के नाम- माधवी, सुंदरवती, मित्रा, यित्रा, शुभा, शीला, शिखा, शांता, रजा, चरा, शची, सखी, रम्भा, भवानी, सरसा, रति, रुचि व समा थे।

अन्य पुत्रों के नाम विभू, विरोचन, वाणी, पावक, अनिल, केशव,

विशाल, रत्न, धन्वी, धामा, पामा, पयोनिधि, कुमार, पवन, माली, मंदोकत, कुंडल, कुश, विकास, विरण, विनोद, वपुन, वली, वीश, हर, रव, दंती, दाड़ियोंदंत, सुंदर कर, खार, गर, शुभ, फ्लश, अनिल, सुंदर, घर प्रखर, मल्लीनाथ, नंद, कुंद, कुलुम्बक, कांति, शांति, क्षमाशाली, पसयामाली और विलासद तथा दो के नाम कुमार थे। उनकी पुत्रियों के नाम दया, शांति, कला, कांति, नितिक्षा, अधरा, अमला, शिका, मही, रमा, रामा, पायिनी, जलदा, शिवा, अमृता और आर्जिका थे।

पुस्तक 'THE ORIGIN OF AGARWALAS' के अनुसार-यह वंशावली जनश्रुति और प्राचीन लेखों से ली गयी है परंतु इसका विशेष भाग भविष्य पुराण के उत्तर भाग में श्री महालक्ष्मी व्रत की कथा से लिया गया है। इस बात का निर्णय महाराज जयसिंह के समय में हुआ था कि वैश्यों में मुख्य अग्रवाल ही हैं। इन अग्रवालों का मुख्य देश पश्चिमोत्तर प्रान्त है और इनकी बोली खड़ी बोली है।

राजकुमार, ऋषि आश्रम और गोत्र

श्री सुरेन्द्र प्रताप गर्ग की पुस्तक के अनुसार महाराजा अग्रसेनजी के पुत्र यानि राजकुमार जैसे-जैसे विद्या अध्ययन के योग्य होते जाते थे उन्हें ऋषियों के आश्रमों में भेज दिया जाता था। कौन से राजकुमार को कौन से ऋषि के आश्रम में भेजा जाएगा। इसका फैसला महर्षि पतंजलि ने किया था। उन्होंने सब से बड़े और सबसे छोटे राजकुमार को एक ही ऋषि के आश्रम में भेजा था। इन पुत्रों में दो से 12 वर्ष तक का अंतर था। इस तरह बड़ी रानी सुन्दरावती के नौ पुत्रों को जिन ऋषियों के आश्रम में भेजा गया उनका विवरण इस प्रकार है-राजकुमार विशप देव अथवा गुलाब देव (गर्गस्य ऋषि), राजकुमार गेंदूमल (गोभिल ऋषि), करन चंद (वतस्य ऋषि), मणिपाल अथवा कानकुन्द (कोशल ऋषि), बलन्दा अथवा बंधुमान (जैमनी ऋषि), ढाऊदेव (मैथल ऋषि), सिंधुपति (तेंगल ऋषि), जीतजनक (ऐरन ऋषि), मंत्रपति (तायल ऋषि)।

छोटी रानी धनपाला के नौ पुत्रों को जिन ऋषियों के आश्रम में भेजा गया

उनका विवरण इस प्रकार है–राजकुमार तम्बोल (ताड़िया ऋषि), ताराचंद (वशिष्ठ ऋषि), वीरभान (मदगल ऋषि), वासुदेव (दीनदल ऋषि), नृसिंह अथवा नारसेव (ढालन ऋषि), अमृतसेन (सींगल ऋषि), इन्द्रमल अथवा इन्द्रसेन (कछल ऋषि), माधोसेन (मधुकुल ऋषि), गोधर (गर्गस्य ऋषि),।

इन 18 राजकुमारों के नाम के साथ इन ऋषियों के नाम भी जुड़ गये। जैसे विशप देव गर्गस्य। इससे यह पहचान होती थी कि किस राजकुमार ने किस ऋषि के आश्रम में शिक्षा–दीक्षा पायी थी। इन्हीं ऋषि के नाम से गोत्र प्रचलित हुए। चूंकि सबसे बड़े पुत्र और सबसे छोटे पुत्र ने एक ही ऋषि के आश्रम में शिक्षा–दीक्षा प्राप्त की थी इसलिए 18 पुत्रों में 17 गोत्र ही बने। लेकिन सबसे छोटे राजपुत्र की पहचान के लिए उसे गोयन गोत्र दिया गया। इसे आधा गोत्र माना गया। यानि कुल साढ़े 17 गोत्र हुए। लेकिन अब यह 18 गोत्र ही माने जाते हैं।

इस तरह गर्गस्य ऋषि के नाम से गर्ग गोत्र प्रचलित हुआ। गोभिल ऋषि के नाम से गोयल, वतस्य ऋषि से बंसल, कोशल ऋषि से कंसल, जेमुनि ऋषि से जिंदल, मैथल ऋषि से मित्तल, मदगल ऋषि से मंगल, ताड़िया ऋषि से तांगल, ऐरन ऋषि से एरन, सींगल ऋषि से सिंगल, कुछल ऋषि से कच्छल (कछल), तेंगल ऋषि से तंगल, वशिष्ठ ऋषि से कोशल, तांगल ऋषि से तायल, नगेन्द्र ऋषि से नागल, ढालन ऋषि से घाया (ढांया) व मधुकल ऋषि से मधुगल गोत्र प्रचलित हुआ।

कृपा बरसाती रहीं कुल देवी महालक्ष्मी

नया राज्य बनाना हो, बसाना हो तो कुल देवी महालक्ष्मी की कृपा हुई। इन्द्र के कोप से बचाने के लिए महालक्ष्मी की कृपा हुई। परशुराम के श्राप को अप्रभावी करने के लिए महालक्ष्मी की कृपा हुई। महालक्ष्मी की कृपा से ही 18वां यज्ञ बिना बलि के सम्पन्न हो सका। महालक्ष्मी ने ही महाराजा अग्रसेनजी को तालाब के रिसने की समस्या से निजात दिलायी।

हुआ यों कि अग्रोहा में जनता के लिए एक बड़ासा तालाब बनाया गया। परन्तु उसमें पानी रुक नहीं पाता था। उसमें बार–बार पानी भरा जाता था और

पानी बार-बार कम हो जाता था। तालाब की जमीन पानी सोख लेती थी। तालाब की तली पक्की करायी गयी पर पानी कम होना बंद नहीं हुआ। अंत में अग्रसेनजी ने महालक्ष्मी की आराधना की। महालक्ष्मी ने इस समस्या का निवारण किया। उन्होंने बताया कि तालाब की तली में अदृश्य छिद्र है जिनसे पानी पाताल में चला जाता है। ऐसी व्यवस्था करो कि तली में कोई छिद्र न रहे। इसके लिए तली को धातु का बनाओ। महाराजा ने विशेषज्ञों को बताया। हजारों मन ताम्बा मंगवाकर उसकी तालाब के आकार की एक चादर बनवाकर तालाब की तली में फिट कर दी गयी। अदृश्य छिद्र बंद हो गया और तालाब पानी से भरा रहने लगा।

---

1. **कुन्दसेन का अंत**

   महाराजा अग्रसेन पर लिखी पूरनचंदजी की पुस्तिका में इस प्रसंग का वर्णन दूसरी तरह किया गया है जो कुछ इस प्रकार है-राज्य के एक वफादार आमत्य ने अग्रसेनजी को सुरंग के रास्ते जंगल तक पहुंचाया। उनके साथ कुछ वफादार सैनिक भी थे। कुन्दसेन को जैसे ही अग्रसेनजी के मुक्त होकर जंगल में पहुंचने की खबर मिली उसने जंगल में आग लगवा दी। अग्रसेनजी ने गुफा में छिपकर अपना बचाव किया। अग्निशांत हुई तो

कुन्दसेन और बज्रसेन ने सैनिकों के साथ उन्हें घेर लिया। तब युद्ध के अलावा कोई चारा नहीं था। अग्रसेन जी शूरवीर और जबरदस्त योद्धा थे। उन्होंने भीषण युद्ध किया। युद्ध में कुन्दसेन के हाथ कट गये। कुन्दसेन मैदान छोड़कर भाग खड़ा हुआ। अग्रसेनजी वापस प्रतापनगर आये तो वहां जश्न का माहौल हो गया। उन्हें राजगद्दी पर बैठाया गया। कुन्दसेन के क्रूर शासन से जनता ने मुक्ति पायी। अग्रसेनजी के छोटे भाई शूरसेन और उनकी माता जी भी प्रताप नगर लौट आयीं। कुन्दसेन के अत्याचारों से त्रस्त होकर सौम्य ऋषि इन दोनों को लेकर अन्यत्र चले गये थे।

2. अग्रोहा की स्थापना

महाराजा अग्रसेन के जीवन पर लिखी पूरन चंद अग्रवालजी की पुस्तिका के अुनसार यह घटना कुछ इस तरह से है- एक बार महाराजा अग्रसेनजी अपने सिपहसालारों के साथ जंगल से गुजर रहे थे। तभी महाराज ने झाड़ियों में छिपी एक शेरनी को देखा। महाराज ने तत्काल निशाना साधा और उस पर वाण चला दिया। शेरनी गिर कर मर गयी। वह गर्भवती थी। उसके गिरते ही नन्हें नर शावक ने जन्म लिया। शावक ने गर्भ से निकलते ही छलांग मारी और महाराजा अग्रसेनीजी के हाथी के मस्तक पर हमला किया। हाथी के मस्तक को घायल करके वह गिर पड़ा और मर गया। तमाम लोग स्तब्ध आश्चर्य चकित रह गये। तभी महाराजा अग्रसेनजी को ज्ञान हुआ कि यह वीर-प्रसूता भूमि है। यहाँ के पशुओं में भी यह गुण है कि वे जन्म लेते ही शत्रु को पहचान कर उससे प्रतिशोध लेने की क्षमता रखते हैं। अगर यहां मनुष्य रहें तो वे कितने साहसी और पराक्रमी होंगे।

वह वहीं एक शिला पर बैठकर अपने सिपहसालारों से विमर्श करने लगे कि क्यों न इसी स्थान पर अपनी नयी राजधानी विकसित की जाये। महाराजा के जंगल में आने की खबर गर्ग मुनि को मिली। वह वहां आये और राजा को अपने आश्रम में ले गये। चूंकि राजधानी बनाने के लिए अत्यधिक धन की आवश्यकता थी, इसलिए गर्ग मुनिं ने महाराजा अग्रसेनजी को महालक्ष्मी की उपासना करने को कहा। अग्रसेनजी धुन के पक्के थे। महालक्ष्मी की तपस्या में लग गये। प्रसन्न होकर महालक्ष्मी जी प्रकट हुईं और महाराजा को उनकी मनोकामना पूरी होने का वरदान दिया। गर्ग मुनि ने भी महाराज को बताया कि इस क्षेत्र में मरूत का खजाना गड़ा है। उसे प्राप्त कर अपनी इच्छा पूर्ण करें। बस खुदाई शुरू हुई। भव्य राजमहल बना। एक लाख घरों वाला सुरक्षित नगर कोट बना। सड़कें तालाब, कुएं आदि बने और बना महालक्ष्मी का भव्य मंदिर। इसी स्थान का नाम अग्रोटक रख गया। यह नाम अग्रोटक से अग्रोदक, आग्नेयगण, आग्रेय, अग्रि और बाद में अग्रोहा हुआ।

3. **विवाह और इन्द्र का कोप**

पूरनचंद अग्रवालजी द्वारा लिखित महाराजा अग्रसेन की जीवनी में अग्रसेनजी के विवाह और इन्द्र कोप का प्रसंग थोड़ा दूसरी तरह से लिखा गया है। उन्होंने लिखा है- उस समय देश में अनेक नागवंशीय शासक थे। नागराज महीधर की कन्या माधवी की ख्याति दूर-दूर तक फैली थी। वह बहुत सुन्दर, सुशील और गुणवान थी। माधवी से इन्द्र विवाह करना चाहता था लेकिन माधवी के पिता महीधर इन्द्र को पसंद नहीं करते थे। महीधर ने महाराजा अग्रसेन की ख्याति सुन रखी थी। उन्होंने माधवी की शादी महाराजा अग्रसेन से कर दी। इससे इन्द्र को बहुत गुस्सा आया। उसने कुपित होकर महाराजा अग्रसेनजी से युद्ध किया। उसने उनके राज्य में वर्षा भी नहीं होने दी। राज्य में अकाल पड़ गया। राज्य की स्थिति देखकर महाराजा ने कुलदेवी महालक्ष्मी की तपस्या प्रारम्भ की। प्रसन्न होकर महालक्ष्मी ने दर्शन दिये और समस्या के निवारण के लिए कोल्हापुर के नागाराज महीरथ की पुत्री सुन्दरावती से विवाह करने को कहा। अग्रसेनजी दूसरा विवाह करना नहीं चाहते थे लेकिन प्रजाहित में वह सुन्दरावती के स्वयंवर में गये और स्वयंवर जीतकर सुन्दरावती को उन्होंने अपनी पत्नी बना लिया। महाराजा अग्रसेन की बढ़ी शक्ति से इन्द्र घबरा गये। उसने सुलह समझौते का रास्ता अपनाया। नारद जी की मदद से युद्धबंदी और मित्रता हुई। इन्द्र ने कुछ उपहार अग्रसेनजी को भेंट किये। इनमें स्वर्गलोक की अप्सरा मधुशालिनी भी थी।

4. श्री पूरनचंद अग्रवाल ने इस प्रसंग को कुछ अलग प्रकार से लिखा है। उनके अनुसार राज्य की अच्छी व्यवस्था के लिए उसे 18 भागों में बांटा गया था। इन भागों को कुल कहते थे। प्रत्येक कुल का निर्धारण यज्ञ करके किया गया और यज्ञकर्ता आचार्य के नाम पर कुल को नाम दिया गया। इन्हें ही गोत्र कहा गया। प्रत्येक कुल का एक कुलपति होता था। इन सभी कुलपतियों को महाराजा अपने पुत्रों के समान समझते थे। वे भी महाराजा को पितृ तुल्य मानते थे। महाप्रतापी नागराजा दशानन की 18 पुत्रियों से इन 18 कुलपतियों का विवाह हुआ। महाराजा ने यह व्यवस्था दी कि अपना गोत्र छोड़कर बाकी 17 गोत्रों में ही विवाह किये जाएंगे।

5. महाराजा अग्रसेन पर लिखी सुरेन्द्र प्रताप गर्ग की पुस्तक के अनुसार युवराज अग्रसेन देशाटन पर निकले। वह विस्तोर नदी के तट पर बनी केतु नगरी पहुंचे। यहां के राजा सुन्दरसेन ने उनका स्वागत किया। वह उनसे बहुत प्रभावित हुए और अपनी पुत्री सुन्दरवती से उनका विवाह कर दिया। इसी पुस्तक के अनुसार अग्रसेनजी का दूसरा विवाह चम्पावती के राजा धनपाल की पुत्री सुन्दरी धनपाला से हुआ। पुस्तक के अनुसार इन दोनों रानियों से उत्पन्न 18 पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं।

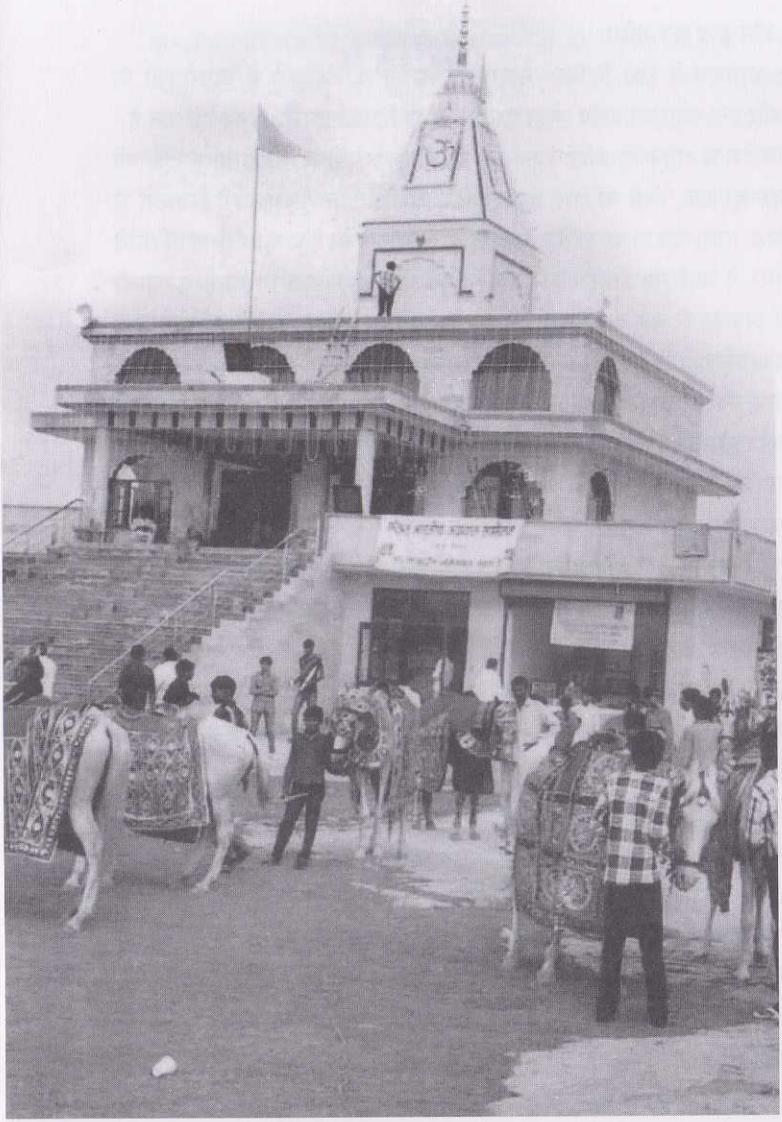

अग्रोहा

अग्रोहा सिर्फ एक शहर नहीं बल्कि एक तीर्थ है और वैश्य समाज का सौभाग्य है कि इतने वर्षों बाद भी अग्रोहा मौजूद है। जबकि द्वारिका का अस्तित्व नहीं रहा। द्वारिका भी अवतारी पुरुष कृष्ण ने बसायी थी। अग्रोहा महाराजा अग्रसेन ने बसाया था। वह बात अलग है कि उनके बाद अग्रोहा ने विनाश और पुनर्निर्माण के भी कई दौर देखे। पर किसी न किसी रूप में अपना अस्तित्व कायम रखा।

पंजाब सरकार के गजेटियर में लिखा है कि अग्रोहा एक प्राचीन नगर था जो आज कल पंजाब प्रांत के हिसार जिले (तब हरियाणा अलग नहीं हुआ था) की फतेहाबाद तहसील में एक कस्बे के रूप में मौजूद है। यह दिल्ली-सिरसा रोड पर दिल्ली से 115 मील दूर है। यह अग्रवालों की जन्म स्थली कहा जाता है जो करीब 2000 वर्ष पूर्व बहुत शक्तिशाली राज्य था।

ग्रीक लेखक टौलमी ने अपनी पुस्तक 'भूगोल का उद्धहरण' में जिस 'आगरा' शहर का जिक्र किया है, भूगोल वेत्ताओं के अनुसार यह आगरा ही 'अग्रोहा' नगर है। सन् 1200 ई. में भारत आये फारस (ईरान) के यात्री इब्नेबतूता ने भी लिखा है कि दिल्ली से 110 मील दूर एक नगर के खंडहर देखने को मिले, जिससे लगता है कि यह नगर कभी बहुत समृद्ध और भव्य व्यवस्था वाला रहा होगा।

साहित्यकार राहुल सांकृत्यायन की पुस्तक 'जय योधेय' के अनुसार 'अग्रेय' यानि 'अग्रोहा' में रहने वाले लोग ही अपनी वीरता और उद्यमिता के कारण 'योधेय' कहलाते थे और यही कारण है कि अग्रोहा की खुदाई में हजारों सिक्के ऐसे मिले हैं, जिन पर योधेय की ओर संकेत करती आकृतियां (बैल, सांड, वृक्ष) बनी हैं।

बात 327 वर्ष ईसापूर्व की है। तब अग्रोहा पर अग्रसेन जी के बाद उनके वंशज महाराजा नंद का राज था। उनके आधिपत्य में सौ छोटे-छोटे राज्य भी थे। महाराजा नंद का भतीजा था गोकुलचंद। जब सिकंदर ने अग्रोहा पर हमला किया तो गोकुलचंद ने सिकंदर का साथ दिया। यहां मामला श्रीलंका के राजा रावण और उसके भाई जैसा ही था। पर विभीषण ने असत्य के खिलाफ सत्य का साथ दिया। वह भगवान राम की शरण में आ गया किन्तु गोकुलचंद को सत्ता की भूख थी। वह महाराजा नंद के बाद अग्रोहा का सम्राट बनने की इच्छा पाले हुआ था। उसने अपने चाचा नंद से कपट किया। वह देश और मातृभूमि का गद्दार निकला। उसने सामरिक महत्व की जानकारियां सिकंदर को दीं। परिणाम भी भयंकर हुआ। इस युद्ध में गोकुलचंद भी मारा गया। जबकि विभीषण सत्य के साथ था तो उसे लंका की राजगद्दी मिली थी। वह भी अवतारी पुरुष भगवान श्रीराम के करकमलों और आशीर्वाद से। 12वीं शताब्दी में मोहम्मद गौरी ने भी अग्रोहा को ध्वस्त किया। लेकिन 17वीं शताब्दी तक अग्रोहा ने किसी न किसी तरह अपना अस्तित्व बनाये रहा।

कहा जाता है कि सिकंदर के साथ हुए युद्ध में करीब एक लाख वीर

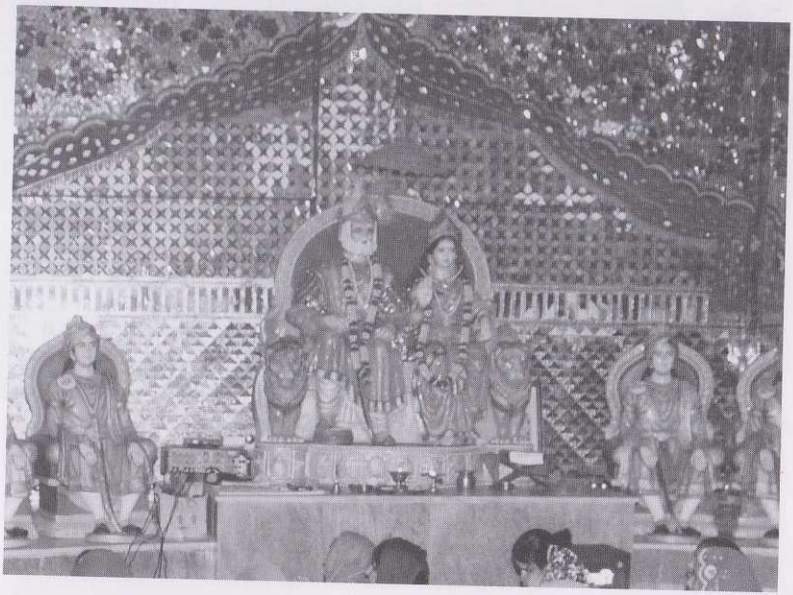

योद्धा वीरगति को प्राप्त हुए थे। अंततः सिंकंदर ने अग्रेयों यानि अग्रोहा के निवासियों की वीरता से प्रभावित होकर अग्रोहा राज्य उन्हीं को सौंपा दिया था। यही नहीं उसने सिरसा नामक एक नगर की स्थापना भी की। लेकिन 712 ई. में इसी सिरसा के एक गद्दार नगारिक रतनसेन ने मुहम्मद अब्दुल बिन कासिम से मिलकर अग्रोहा पर हमला करवा दिया। इससे पूर्व 702 ई. में अग्रोहा में अग्रोहा के ही दो कपटी लोगों शिवानंद और धर्मसेन ने धाम नगर के राजा समरजीत से मिलकर अग्रोहा पर हमला करवा दिया था। 1195 ई. में शहाबुद्दीन गौरी के आक्रमण से अग्रोहा एक बार पुनः ध्वस्त हो गया। सन् 1388 ई. में बादशाह फीरोजशाह तुगलक ने अग्रोहा के अवशेषों के पत्थर आदि हिसार के किले में लगवा लिए। हिसार को उसने नई राजधानी के रूप में विकसित किया था। इसके अलावा भी अग्रोहा कई बार उजड़ा और बसा। अग्रोहा के लोग हर बार अग्रोहा को भव्य और समृद्ध बना लेते थे और इसी कारण लालची हमलावर अग्रोहा को लूटकर उजाड़ देते थे। इससे परेशान होकर अग्रोहा के अनेक निवासी पानीपत, नरनौल, करनाल, दिल्ली, मेरठ, अलीगढ़, बुलंदशहर, आगरा, मारवाड़, उज्जैन (म.प्र.), कुमाऊं,

बिहार, पश्चिम बंगाल तक चले गये, बस गये। अग्रोहा में रहने वाले कई प्रभावशाली लोगों ने अग्रोहा के आसपास नगर भी बसा लिए। जैसे मुंडलजी ने मंडाहल नगर बसाया। भिवानी से 26 मील दूर एक कस्बे के रूप में यह आज भी है। इन्हीं मुंडलजी के वंशजों ने सन् 1515 में केड नामक कस्बा बसाया। बाद में यहां के लोग केडिया कहलाए। बहरहाल मुगलकाल तक 'अग्रोहा' आकर्षण का केन्द्र रहा। अकबर के शासनकाल में अग्रोहा उनका एक प्रशासनिक केन्द्र रहा।

अग्रोहा का निर्माण एक अवतारी पुरुष की इच्छा और उसके प्रयासों से किया गया था, इसलिए यह सुंदरता, शांति और विकास के लिहाज से अद्‌भुत था। अग्रोहा बीस हजार बीघे में फैला था। इसके चारों ओर चारदीवारी थी और उसके बाद बड़ी-बड़ी खाइयां बनी थीं। उस जमाने में यह सबसे मजबूत सुरक्षा व्यवस्था होती थी। खाइयां इतनी चौड़ी होती थीं कि घोड़ा छलांग लगाकर पार न कर सके और इतनी गहरी होती थी कि हाथी डूब जाए। नगर में आने-जाने के लिए एक भव्य और विशाल द्वार था। अग्रोहा नगर के भीतर रंग-बिरंगे आकर्षक और सुगंधित फूलों और फलों के

असंख्य पेड़ थे।

अग्रोहा नगर में आलीशान भवन थे। इसकी गवाही तो यहां मौजूद खंडहर भी देते हैं। पक्के कुएं, अस्पताल, धर्मशालाएं, पार्क और सुव्यवस्थित बाजार थे। अग्रोहा में पुरातत्व विभाग द्वारा खुदाई में तांबे के बर्तन, आभूषण, मूर्तियां (बराह, कुबेर, महषिमर्दनी व नागराज की), गृहस्थी का सामान, रसोई का सामान, सिक्के, खिलौने निकले थे।

कभी अग्रोहा राज्य की सीमाएं पूर्व में गंगा, पश्चिम में यमुना से लेकर मारवाड़, उत्तर में हिमालय पर्वत और पंजाब की नदियां तथा दक्षिण में फिर गंगा से मिलती थीं। तब दिल्ली को इंद्रप्रस्थ कहा जाता था। अग्रोहा राज्य का दूसरा बड़ा नगर अग्रपुर था। इसी को आजकल आगरा कहते हैं। अग्रपुर को महाराज महीधर ने अपने पुत्र अग्रसेन के जन्म की खुशी में बसाया था। अग्रवालों के पुरोहित गौड़ को भी एक प्रदेश दे दिया गया था। यह क्षेत्र आजकल गुड़गांव कहलाता है। तब रोहतक, करनाल और उ.प्र. का जिला मेरठ भी अग्रोहा राज्य में ही आता था।

संदर्भ ग्रंथ

1. महाराजा अग्रसेन व्यक्तित्व एवं कृतित्व, लेखिका : स्वराजमणि अग्रवाल, प्रकाशक : बालकिशन अग्रवाल, राष्ट्रीय महामंत्री, अखिल भारतीय अग्रवाल सम्मेलन, नई दिल्ली।
2. युग पुरुष महाराजा अग्रसेन, अग्रसेन-अग्रोहा-अग्रवाल (सरल एवं संक्षिप्त इतिहास), लेखक : पूरनचंद्र अग्रवाल, मनोरम प्रकाशन, आगरा।
3. महाराजा अग्रसेन, लेखिका : डॉ. स्वराजमणि अग्रवाल, प्रकाशक : अग्रोहा विकास ट्रस्ट, अग्रोहा धाम, हिसार
4. महाराजा अग्रसेन : जीवन चरित्र, लेखक : सुरेन्द्र प्रताप गर्ग, प्रकाशक : गुप्ता एंड कंपनी, दिल्ली।
5. स्वतंत्रता प्रेरक महाराजा अग्रसेन, लेखक : सुरेन्द्र प्रताप गर्ग
6. अग्रवाल जाति का प्राचीन इतिहास, लेखक : सत्यकेतु विधालंकार, प्रकशक : श्री सरस्वती सदन, दिल्ली।
7. अग्रवाल एवं वैश्य वंश का इतिहास, लेखक : अज्ञात

ISBN : 978-81-929878-0-4

श्री अग्रसेन फाउंडेशन

83, मॉडल बस्ती, करोल बाग, नई दिल्ली-110005

दूरभाष : 011-23633333, 23510630

E-mail : agroha@gmail.com

Website : www.allagrawal.org